Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

महाभारतमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

झिंझुवाडीया धनजीभाई कानाभाई
शोधछात्र
श्री सौराष्ट्र युनिवर्सिटी – राजकोट

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

प्रास्ताविक

भारतीय संस्कृति एवं साहित्यमें मानवजीवन के सर्वांगीण विकास के लिए पुरुषार्थ की अनिवार्यता का स्वीकार किया गया है । **'पुरुषरथर्यते पुरुषार्थ'** अर्थात पुरुष के लिये जो अर्थपूर्ण एवं अभिष्ट है उसकी प्राप्ति हेतु उद्यम करना ही पुरुषार्थ है । पुरुषार्थों की संख्या चार है – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इन चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करना ही मनुष्यमात्र के जीवन दर्शनका आधार माना गया है । हितोपदेशमें कहा गया है –

धर्मार्थ काममोक्षाणां यस्यै कोऽपि निद्यते ।
अजागलस्तनस्यैव यस्य जन्म सदा वृथा ॥

रामायणमें कुम्भकर्ण रावणसे कहते है कि नीतिज्ञ पुरुषको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका अथवा तीनों द्वंद्वोका – धर्म-अर्थ, अर्थ-धर्म और काम-अर्थ का उपयुक्त समय पर ही सेवन करना चाहिए ।[1] श्रीमद्भागवत के अनुसार जगतमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चतुर्वर्ग ही समस्त मनुष्योंकी सम्पूर्ण चेष्टाओंका लक्ष्य है ।[2] इसके अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों में पुरुषार्थ चतुष्टयकी महत्ता का स्वीकार किया गया है । महाभारत भारतीय साहित्य का पञ्चमवेद माना जाता है । महर्षि वेदव्यासने भी अनेक स्थानों पर पुरुषार्थ चतुष्टय की महीमा का गुणगान किया है ।

(१) धर्म

पुरुषार्थ चतुष्टयमें धर्मका स्थान प्रमुख है । धर्म शब्द मूलतः धृ धातुसे निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है धारण करना, अस्तित्त्व बनाये रखना । अर्थात् धर्म वह तत्त्व है जो मनुष्य तथा समाज के अस्तित्व को कायम रखता है । धर्मपूर्वक आचार के विषयमें वामदेवजी वसुमना से कहते है कि हे राजन ! तुम धर्मका ही अनुसरण करो । धर्म से बढकर दूसरी कोई वस्तु नहीं है; क्योकि धर्ममें स्थित रहनेवाले राजा इस सारी पृथ्वीको जीत लेते है ।[3]

---

[1] धर्ममर्थं हि कामं वा सर्वान् वा रक्षसां पते ।
भजेत पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥वा.रा. युद्धकाण्ड सर्ग – ६३/९

[2] पुंसाममायिनां सम्यग् भजतां भाववर्धनः ।
श्रेयो दिशत्यभिमतं यद् धर्मादिषु देहिनाम् ॥ श्रीमद्भागवत ४/८/६०

[3] धर्ममेवानुवर्तस्व न धर्माद् विद्यते परम् ।
धर्मस्थिता हि राजानो जयन्ति पृथिवी मिमाम् ॥ महाभारत शान्तिपर्व पर्व अध्याय ९२/६

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

महाभारतमें त्रिवर्गमें सबसे अधिक धर्मको ही महत्त्व दिया गया है क्योकि वही समस्त पुरुषार्थो की जड है। धर्मात्मा को इस लोक और परलोक – दोनों ही जगह सुख प्राप्त होता है ।[4] महात्मा विदुर युधिष्ठिरसे कहते है कि धर्म से ही ऋषियोंने संसार समुद्रको पार किया है । धर्म पर ही सम्पूर्ण लोक टिके हुए है । धर्म से ही देवताओं की उन्नति हुई है और धर्म में ही अर्थ की भी स्थिति है।[5]

पितामह भीष्म शान्तिपर्वमें युधिष्ठिरको सभी वर्णों के लिये उपयोगी नौ धर्मों का उपदेश देते है।[6]

भगवान मनु के अनुसार मनुष्योंको ऎसे अर्थ और काम का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए, जो धर्मरहित हो ।

धर्मव्याघ कौशिकसे कहते है कि जिसका आरम्भ (उप्रक्रम या योजना) न्याययुक्त हो वही धर्म कहा गया है । इसके विपरीत जो अनाचार है, वह अधर्म है ।[7]

विदुर धृतराष्ट्रसे कहते है कि जो अर्थ की पूर्ण सिद्धि चाहता है, उसे पहले धर्मका ही आचरण करना चाहिए । जैसे स्वर्ग से अमृत दूर नहीं होता, उसी प्रकार धर्म से अर्थ अलग नहीं होता।[8] इसके अतिरिक्त महाभारतमें कई स्थानों पर विविध पात्रों द्वारा विविध धर्मों का वर्णन किया गया है । जिसमें वनपर्वमें भीम द्वारा क्षत्रियधर्म का, उद्योगपर्वमें विदुर द्वारा राजधर्मका, कर्णपर्वमें श्रीकृष्ण द्वारा स्वधर्म का शान्तिपर्वमें अर्जुन द्वारा राजा के धर्म तथा अनुशासनपर्वमें भ्रातृधर्मका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है ।

(२) अर्थ

[4] धर्मे चार्थे च कामे च धर्म एवोत्तरो भवेत् ।
अस्मिल्लोके परे चैव धर्मात्मा सुखमेधते ॥ महाभारत शान्तिपर्व पर्व. ९१/५२

[5] महा. शान्तिपर्व १६७/७

[6] महा. शान्तिपर्व ६०/७,८

[7] महा. वनपर्व २०७/७७

[8] विदुरनीति अध्याय ५/४८

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

पुरुषार्थ चतुष्टयमें दूसरा स्थान अर्थ का है । संसारमें जीवन निर्वाह हेतु मानव द्वारा अर्थोपार्जन करना आवश्यक है । कौटिल्य के अनुसार **मनुष्याणां वृत्तिः** अर्थ अर्थात् जो भी विचार एवं क्रिया भौतिक जीवन से सम्बन्धित है, उन्हे अर्थ की संज्ञा दी गई है । महाभारतमें कई स्थानों पर अर्थ के महत्त्व और अर्थप्राप्ति के उपायों की चर्चा हुई है । अर्जुन युधिष्ठिर से कहते है कि यह कर्मभूमि है । यहां जीविका के साधनभूत कर्मों की ही प्रशंसा होती है । खेती, व्यापार, गोपालन तथा भांति – भांति के शिल्प – ये सब अर्थप्राप्ति के साधन है ।[9] अर्थ ही समस्त कर्मोंकी मर्यादा के पालनमें सहायक है । अर्थ के बिना धर्म और काम भी सिद्ध नहीं होते ।[10] धर्म और काम अर्थ के ही दो अवयव है । अर्थ की सिद्धि से उन दोनों की भी सिद्धि होती है – ऐसा श्रुति का कथन है ।[11] राजा को अर्थ की प्राप्ति धर्मानुसार करनी चाहिए क्योकि शास्त्रसे विपरीत चलनेवाला राजा न तो धर्म की सिद्धि कर पाता है और न अर्थ की । उसे यहि धन मिल भी जाय तो वह सारा ही बुरे कामों में नष्ट हो जाता है । अत एव जो मनुष्य शास्त्र के अनुसार नहीं चलता, उसको धर्म और अर्थ दोनों ही अस्थिर तथा अनिश्चित होते है।[12] श्रीराम भरतसे कहते है कि तुम असमयमें ही निन्द्रासे वशिभूत तो नहीं होते ? समय पर जाग जाते हो न ? रात के पीछले प्रहर में अर्थसिद्धि के उपाय पर विचार करते हो न ?[13] शान्तिपर्वमें पितामह भीष्म अर्थप्राप्ति के आठ उपाय बताते है ।[14] देवर्षि नारद युधिष्ठिर को राजा के कोश और धनकी वृद्धि के लिये आठ कर्म बताते है ।[15] विदूरजी कहते है – जो सज्जन पुरुषोंसे आदर पाकर आसक्ति रहित हो अपनी शक्ति के अनुसार अर्थसाधन करता है, उस श्रेष्ठ पुरुषको शीघ्र ही सुयश की प्राप्ति होती है ।[16]

---

[9] महा. शान्तिपर्व १६७/११

[10] महा. शान्तिपर्व १६७/१२

[11] महा. शान्तिपर्व १६७/१४

[12] महा. शान्तिपर्व ७१/१३

[13] वाल्मीकि रामायण सर्ग १००/१७

[14] महा. शान्तिपर्व १८९/१०

[15] महा. सभापर्व ५/२२

[16] विदुरनीति ८/१

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

इस प्रकार मानवजीवनमें अर्थप्राप्ति की अनिवार्यता होने पर भी उसका धर्मयुक्त होना अनिवार्य माना गया है ।

(३) काम

चारों पुरुषार्थोंमें काम तृतीय स्थान पर है । **काम्यते रति कामः** इस व्युत्पत्ति के अनुसार विषय और इन्द्रियों के सम्पर्क से उत्पन्न होनेवाला मानसिक आनन्द काम कहलाता है। प्राणीमात्रकी समस्त कामनाओं एवं इच्छाओं का नाम काम है । मन को कामनाओं की उत्पत्ति का स्थान माना गया है । चाणक्य कहते है – धर्मार्थविरोधेन कामं सेवेत । अर्थात धर्म और अर्थ के विरुद्ध काम का सेवन नहीं करना चाहिए । महर्षि वेदव्यासने महाभारत को कामशास्त्र भी कहा है ।[17] महाभारत में कहा गया है कि पांचों ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धिकी अपने विषयों में प्रवृत्त होने के समय जो प्रीति होती हैं, वही काम है ।[18] स्त्री, माला, चन्दन आदि द्रव्यों के स्पर्श और सुवर्ण आदि धनके लाभ से जो प्रसन्नता होती है, उसके लिए जो चित्तमें संकल्प उठता है, उसी का नाम काम है ।[19] अर्थात् काम चित्त का एक संकल्प है । उसका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है । अतः वह केवल अनुभवगम्य है । भगवान मनुने कहा है कि विना काम के कोई भी क्रिया, कोई भी जीव नहीं करता । जो कुछ भी, जो कोई भी, करता है, वह अन्ततः काम को चेष्टा से अर्थात् सुखकी लिप्सा से ही करता है । जीवन के अस्तित्व, प्रजोत्पत्ति आदि के लिए काम अनिवार्य पुरुषार्थ होने पर भी महाभारतमें धर्मविरुद्ध काम का सेवन निन्दित माना गया है । शान्तिपर्वमें कहा गया है – "जो धर्म और अर्थका परित्याग करके केवल काम का ही सेवन करता है उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है । उसमें नास्तिकता और दुराचार की भावना उत्पन्न होती है ।"[20] जो चित्त के विकारभूत पांच इन्द्रियरूपी भीतरी शत्रुओं को जीते बिना ही दूसरे शत्रुओंको जीतना चाहता है, उसे शत्रु पराजित कर देते है ।

(०४) मोक्ष

[17] महा. आदिपर्व २/३८३

[18] महा. वनपर्व ३३/३७,३८

[19] महा. वनपर्व ३३/३०

[20] महा. शान्तिपर्व १२३/१५-१७

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

पुरुषार्थ चतुष्टयमें मोक्षको मानवजीवन का प्रधान एवं अन्तिम लक्ष्य माना गया है । धर्मग्रन्थों के अनुसार जीव का जन्म और मरण के बन्धन से छूट जाना ही मोक्ष है । मोक्षप्राप्ति के बाद जीव को इस संसार में आवागमन से मुक्ति मिलती है । विष्णुपुराण के अनुसार सांसारिक दु:खरूपी प्रचण्ड सूर्य के ताप से जिसका अन्त:करण संतप्त हो रहा है, उन पुरुषों को मोक्षरूपी कल्पवृक्ष की शीतल छायाको छोडकर और कहां सुख मिल सकता है । महाभारतमें अनेक स्थानों पर मोक्ष और मोक्षप्राप्ति के उपायों की चर्चा की गई है । जिसमें ज्ञान, भक्ति, कर्म, धर्म तथा वैराग्य आदि को मोक्षप्राप्ति के साधनभूत कर्तव्य बताकर मनुष्यको मुक्तिका मार्ग बताने का प्रयास किया गया है । शान्तिपर्वमें जनक शुकदेवजी से कहते है कि जिस समय मनुष्य निन्दा और स्तुति को समान भाव से समझता है, सोना-लोहा, सुख-दु:ख, सर्दी-गर्मी, अर्थ-अनर्थ, प्रिय-अप्रिय तथा जीवन-मरणमें भी उसकी दृष्टि समान हो जाती है, उस समय वह साक्षात् ब्रह्मभाव (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है ।[21] पितामह भीष्म कहते है कि मूढता और आसक्ति का अभाव, काम और क्रोध का त्याग एवं दीनता, उद्दण्डता तथा उद्वेग से रहित होना और चित्त की स्थिरता एवं निष्काम भाव से मन, वाणी और इन्द्रियों का संयम – यह मोक्ष – का स्वच्छ, निर्मल एवं पवित्र मार्ग है ।[22] ब्रह्माजी कहते है कि जो निष्काम, निर्गुण, शान्त, अनासक्त, निराश्रय, आत्मपरायण और तत्त्व का ज्ञाता होता है वह मुक्ति (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है ।[23] श्रीकृष्ण मोक्षप्राप्ति का मार्ग बताते हुए कहते है कि विवेकशील बुद्धिमान पुरुषोंके विवेक और चतुराई की पराकाष्ठा इसीमें है कि वे इस विनाशी और असत्य शरीरके द्वारा मुझ अविनाशी सत्यतत्त्व को प्राप्त कर ले । जो लोग इस परम सत्य आत्मतत्त्व को जान लेते है, इसे प्राप्त कर लेते है, वे अमर हो जाते है । और जो उसको नहीं जानते, वे बारम्बार मृत्युको ही प्राप्त होते रहते है ।

निष्कर्ष:

इस प्रकार सम्पूर्ण मानवजीवन के सभी विषय इन्ही चारों पुरुषार्थों के अन्तर्गत सम्मिलित है । मनुष्य अपने भिन्न – भिन्न कर्मो एवं कर्तव्यों का सम्पादन पुरुषार्थ के

[21] महा. शान्तिपर्व ३२६/३७,३८

[22] महा. शान्तिपर्व २७४/१८,१९

[23] महा. अश्वमेधिक पर्व ४६/४६

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.j.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

संयोग से ही करता है । वेदो, पुराणों एवं धर्मग्रन्थोंमें प्रतिपादित पुरुषार्थ के सिद्धांत मनुष्यजीवन को संतुलित करके समाज और प्राणीमात्र के प्रति अपने मूल नैतिक कर्तव्यों के निर्धारण की प्रेरणा देते है । धर्म, अर्थ और काम द्वारा व्यक्ति स्वधर्मपालन के माध्यम से सांसारिक सुखों का उपभोग करके जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्श को प्राप्त कर सकता है । महाभारतमें इन चारों पुरुषार्थो के विषयमें जो कहा गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । इसिलिये कहते है ---

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥

संदर्भग्रन्थ

१. महाभारत (शान्तिपर्व) खण्ड – ५,१५/सं.२०७२
२. महाभारत (वनपर्व) खण्ड -२, १५/ सं. २०७२
३. महाभारत (आदिपर्व, सभापर्व) खण्ड -१, १७/ सं. २०७२
४. महाभारत (आश्वमेधिकपर्व) खण्ड -६,१५/ सं. २०७२
५. विदुरनीति – सत्यवीर शास्त्री प्रकाशक – मनोज पब्लीकेशन्स,
१४, संस्करण – २०१८
६. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण – खण्ड -१, ४५/ सं २०७२